पूज्य बाबूजी जुगल किशोर जी युगल, कोटा
आदरणीय चेतनभाई के साथ तत्त्व-चर्चा
तारीख २४-०९-२०१३, निज निवास स्थान – कोटा

आ. चेतनभाई: इसमें गुरुदेव का प्रवचन है। उस प्रवचन में गुरुदेव ने बोला है.... गुरुदेव ने त्रिकाली द्रव्य की बहुत बात की न, तो इसमें एक-दो पैराग्राफ़ हैं (वो) मैं आपको पढ़कर सुनाता हूँ बाबूजी।

(गुरु कहान दृष्टि महान - भाग ३ पृष्ठ १७२)

जो वस्तु है, वह त्रिकाल निरावरण निरुपाधिस्वरूप ही है, वीतरागस्वरूप ही है। उसमें जो पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं । आहाहा! तो उसमें नहीं तो उसके द्वारा ज्ञात अवश्य हो वापस। आहाहा! अपेक्षा तो कितनी! उसमें पर्याय, द्रव्य में नहीं, परन्तु ज्ञात हो तो उस पर्याय द्वारा ही ज्ञात हो। आहाहा! पर्याय बिना द्रव्य होता नहीं कहीं कभी तीन काल में। इसलिए ज्ञात हो, तब उस पर्याय द्वारा ज्ञात होता है; पर्याय में द्रव्य का स्वरूप जैसा है, जितना है, उतना ज्ञात होता है, तथापि वह द्रव्य, पर्याय में नहीं आता, तथापि उस द्रव्य में पर्याय की नास्ति है और पर्याय में द्रव्य की नास्ति है। आहाहा! द्रव्य में पर्याय की नास्ति है (और) पर्याय में द्रव्य की नास्ति है। **ऐसा** बहुत **सूक्ष्म है।**

तो मुमुक्षु ने प्रश्न किया है कि ये तो **इन्द्रजाल जैसा लगे।** तो गुरुदेव का जवाब है इसमें कि **इन्द्रजाल है। कहा है न, वहाँ कहा है। प्रभु! एक ओर आप कारक नहीं, ऐसा कहो, आहाहा! और धर्म नहीं, गुण नहीं-ऐसा कहो। धर्म नहीं अर्थात्?** अभी ये बात आयी है। धर्म नहीं है उसका मतलब क्या? **नित्य-अनित्य, एक-अनेक-ऐसे अपेक्षित धर्म है, परन्तु वस्तु में नहीं।**

वस्तु में वो धर्म नहीं हैं। **नित्य-अनित्य, एक-अनेक-ऐसे अपेक्षित धर्म है, परन्तु वस्तु में नहीं।**

पू. बाबूजी: हाँ! ठीक है जैसे पर्याय है।

आ. चेतनभाई: हाँ! **कारक पयायि में हैं, कारक-षट्कारकरूप से पर्याय परिणमती है, अस्तिरूप से स्वयं ही स्वयं से, हों! द्रव्य की अपेक्षा नहीं। निमित्त की अपेक्षा तो नहीं; द्रव्य की अपेक्षा नहीं। वह पर्याय षट्कारकरूप से परिणमती है, तथापि वे पर्याय के षट्कारक हैं, वे द्रव्य में नहीं। द्रव्य के षट्कारक ध्रुव हैं, वे अलग हैं।** और पर्याय षट्कारक् परिणमते हैं। **यह तो षट्कारक का पर्याय का परिणमन जो है, वह द्रव्य में नहीं, तथापि**

षट्कारक का परिणमन है, उसमें द्रव्य का जितना और जैसा सामर्थ्य है, उतना पर्याय में ज्ञात होता है और श्रद्धा में आ जाता है।

तो इस पैराग्राफ में गुरुदेव ने नित्य-अनित्य धर्म और षट्कारक को दोनों को इसमें से निकाल दिया है।

पू. बाबूजी: आ गया। साफ आ गया।

आ. चेतनभाई: ये पूरा (ही).... ये बहुत अच्छा आधार है क्योंकि इसके सिवा कहीं भी गुरुदेव ने ऐसा स्पष्टीकरण नहीं किया है। इसमें बहुत अच्छा आया है स्पष्टीकरण।

(Bookmark करने की बात)

आ. चेतनभाई: .... गोष्ठी चलनेवाली है ५ से ९ तारीख तक, तो मैं भी वहाँ जानेवाला हूँ। तो उसमें ये proof (प्रमाण) दिखाकर पूरा उसको समाज के सामने ही बोल देंगे तो एक बात का निराकरण हो जाएगा। ये तो बरसों से आप तो बोल (ही) रहे हैं। आपके तो ज्ञान में पहले से ही है (ये) बात तो और बहुत बार तो ये विषय आ चुका है। मगर गुरुदेव का एक आधार मिल जाये न तो बहुत अच्छा रहता है।

पूज्य बाबूजी: षट् कारक का किसने इनकार किया?

आ. चेतनभाई: षट् कारक का नहीं इनकार किया (है)।

पूज्य बाबूजी: मैं तो बहुत पहले से ही कहता आया हूँ। मैं (तो) जो (ये) नया समयसार है (जो) यहाँ से छपा है, उसमें जैन-दर्शन लेख है पीछे, परिशिष्ट में। उसमें मैंने काफी लिखा है ये सापेक्ष धर्मों का (और वो भी) युक्ति पूर्वक लिखा है मैंने।

आ. चेतनभाई: हाँ! वही वो हेमचंद जी ने किया है.... वो अमृतचंद्र आचार्य और जयसेन आचार्य की टीका आ गई है (उसमें)। उसी में न? हाँ वही वही, वही। पीछे आया आपका।

पूज्य बाबूजी: आपके पास है न?

आ. चेतनभाई: हाँ! है न मेरे पास है। मेरे पास है।

पूज्य बाबूजी: उसमें लेख है वो "जैन-दर्शन स्वरूप एवं समीक्षा"। हेमचंद जी ने फिर English translation (अंग्रेजी अनुवाद) किया है। उसमें मैंने लिया है ये सापेक्ष धर्मों का.... और गुणों का अंतर भी बताया (है)। सापेक्ष धर्मों का उसमें उदाहरण भी है कि जैसे एक व्यक्ति में सत्य बोलना, हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, बहुत विनम्र होना - ऐसे बहुत गुण होते हैं। और उसमें जो है वो पिता भी है, पुत्र भी है, चाचा भी है, मामा भी है, भानजा भी है - ये गुण नहीं हैं (बल्कि) ये धर्म हैं। ये अपेक्षा से पैदा होते हैं और (अपेक्षा से) मिट भी जाते हैं। गुरुदेव ने तो इतना लिखा है उसमें ४७ वो जो धर्मों का....

आ. चेतनभाई: नय में, ४७ नय (में)।

पूज्य बाबूजी: नय। उसमें शुरू में ही लिखा है कि जो विकार से संबंधित धर्म हैं उनका अभाव भी हो जाता है - ऐसा लिखा है गुरुदेव ने।

आ. चेतनभाई: बराबर! बराबर! अच्छा, नय में। नय-प्रज्ञापन (में)?

पूज्य बाबूजी: हाँ! मैंने तो युक्तिपूर्वक लिखा है।

आ. चेतनभाई: एकदम युक्तिपूर्वक।

पूज्य बाबूजी: कि ये पिता होना (और) पुत्र होना.... नाना होना, चाचा होना, भानजा होना....

आ. चेतनभाई: वो अपेक्षित हो गया।

पूज्य बाबूजी: ये गुण नहीं हैं।

आ. चेतनभाई: गुण नहीं है। सही बात है।

पूज्य बाबूजी: सापेक्ष हैं।

आ. चेतनभाई: सापेक्ष हो गया। बराबर! बराबर है। बराबर!

पूज्य बाबूजी: गुण अलग हैं उसमें।

आ. चेतनभाई: सही बात है! सही बात है! एकदम बराबर! हाँ! उससे एकदम difference (अंतर) पता चल जाता है, गुण का और धर्म का। बराबर!

पूज्य बाबूजी: तो गुणों का अभाव नहीं होता। ये अच्छा आ गया है ये.... वो लेख पढ़ना आप दोबारा।

आ. चेतनभाई: हाँ, हाँ! मैं पढ़ लूँगा। दोबारा पढ़ लूँगा। पढ़ लूँगा।

पूज्य बाबूजी: और पर्याय नहीं होती (है) धर्मों की।

आ. चेतनभाई: हाँ! गुणों की पर्याय होती है (मगर) धर्मों की पर्याय नहीं होती है।

पूज्य बाबूजी: और ये परस्पर विरुद्ध होते हैं।

आ. चेतनभाई: बराबर! युगल हैं, वो दोनों साथ में ही रहते हैं।

पूज्य बाबूजी: परस्पर विरुद्ध होंगे तो उनको द्रव्य में मिलायेंगे तो द्रव्य कैसा लगेगा? परस्पर विरुद्ध ही अनुभव में आयेगा या नहीं?

आ. चेतनभाई: हाँ! वो बराबर है। ऐसा नहीं होता है।

पूज्य बाबूजी: तो अनित्यता अनुभव में आएगी।

आ. चेतनभाई: सही बात है, एकदम बराबर है। वो नित्य-अनित्य धर्म ....

पूज्य बाबूजी: वो साफ ही हो गया। केवल विकल्प अनुभव में आएगा। अनुभूति हो ही नहीं सकती (उसमें)। दोनों ये साथ रहते हैं इसलिए (उनको) सापेक्ष कहते हैं। साथ रहने पर भी एक दूसरे से इनका स्वरूप विरुद्ध है इसलिए (इनको) विरुद्ध कहते हैं लेकिन (वे) एक दूसरे का विरोध नहीं करते। विरोध नहीं करते।

आ. चेतनभाई: सही बात है, बराबर है। साथ में रहने पर, विरुद्ध होने पर (भी वे) एक दूसरे का विरोध नहीं करते हैं।

पूज्य बाबूजी: विरोध नहीं करते।

आ. चेतनभाई: सही बात है।

पूज्य बाबूजी: और सापेक्ष कहते हैं पर वास्तव में वो निरपेक्ष ही हैं।

आ. चेतनभाई: अपनी-अपनी तरफ से दोनों निरपेक्ष ही हैं।

पूज्य बाबूजी: अस्ति अस्ति स्वरूप ही है (और) नास्ति नास्ति स्वरूप ही है। सब लिखा है वहीं।

आ. चेतनभाई: मैं पढ़ लूँगा एक बार। मैंने पढ़ा है बहुत टाइम पहले (एक बार) फिर (से) पढ़ लूँगा।

पूज्य बाबूजी: श्रद्धा का विषय खोल दिया है उसमें।

जैसे मिथ्या श्रद्धा है, उसका विषय सारा जगत होने पर भी वो जगत के रूप में प्रतीति में नहीं आता। वो केवल आत्मा के रूप में प्रतीति में आता है..... कि जैसे ये धर्म हैं। उसको धर्म की भी श्रद्धा है न, मिथ्या श्रद्धा है। ये मुझे मदद करता है ऐसा होने पर भी.... जानने में तो धर्म आता है पर श्रद्धा में धर्म नहीं आता। श्रद्धा में केवल आत्मा "मैं हूँ" (ऐसा) श्रद्धा का विषय आत्मा ही होता है हमेशा। चाहे मिथ्या हो तो वो पर को भी आत्मा के रूप में .....

आ. चेतनभाई: आत्मा के रूप में ही मानती है वो। बराबर है।

पूज्य बाबूजी: स्व-पर का भेद नहीं है श्रद्धा में।

आ. चेतनभाई: वो तो ज्ञान का विषय हो गया वो।

पूज्य बाबूजी: ज्ञान में है वो। अगर इसमें स्व-पर का भेद हो तो फिर ज्ञान की ज़रूरत नहीं है। वो ज्ञान हो जाएगी।

आ. चेतनभाई: सही बात है। एकदम बराबर! बराबर है। सही बात है।

पूज्य बाबूजी: ये स्व के रूप में ही परिणमित होती है मिथ्या भी। सारा जगत आत्मा है, मैं हूँ - ऐसा ही इसरूप में प्रतीति होती है।

आ. चेतनभाई: हाँ! मिथ्या श्रद्धा में ऐसे ही प्रतीति चलती है।

पूज्य बाबूजी: हाँ! इसरूप में जानने में आता है ऐसा नहीं (है)। श्रद्धा में जानने का नहीं है। प्रतीति होती है।

आ. चेतनभाई: सही बात है, बराबर है।

पूज्य बाबूजी: अहम् होता है, अहम्।

आ. चेतनभाई: अहम् होता है, बराबर है।

बाबूजी! गुरुदेव ने कोई-कोई जगह पर ऐसी एक बात रखी है, कोई-कोई जगह पर। वैसे तो श्रद्धा का विषय तो निर्विकल्प ही है। वो तो प्रतीति जहाँ भी होती है १०० percent (प्रतिशत) ही होती है, चाहे पर में हो या स्व में हो। पर को अपना माने तो आत्मा के रूप में ही मानता है; वो मिथ्या श्रद्धा हो गई।

अभी उसको जाना उसका नाम ज्ञान है। तो वो तो ज्ञान का विषय हो गया। तो भी गुरुदेव ने..... प्रवचनसार की २४२ गाथा है। उसमें और उसके साथ में दूसरी भी दो-तीन जगह पर ऐसी बात बोली है कि ज्ञातृतत्त्व और ज्ञेयतत्त्व दोनों की प्रतीति, उसका नाम ज्ञान-प्रधान सम्यग्दर्शन है।

पूज्य बाबूजी: हाँ!आया है ये। आया है शास्त्र में। अपेक्षायें हैं ये (तो)।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो तो अपेक्षाएँ हैं। उसमें अभी एक ऐसी बात चलती है कई जगहों पर.... मैं कई जगह जाता रहता हूँ न तो ऐसी बात चलती है कि श्रद्धा का विषय त्रिकाली द्रव्य है वो तो बराबर ही है।

पूज्य बाबूजी: वो तो अलग है सम्यग्दर्शन।

आ. चेतनभाई: हाँ सम्यग्दर्शन। तो वो ऐसे कहीं कोई-कोई लोगों का ऐसा मत है कि ये ज्ञानप्रधान श्रद्धान है तो ज्ञान और ज्ञायक दोनों को साथ में रखकर श्रद्धा करे तो भी सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा नहीं कि अपने को पर्याय को बाहर रख देना और अकेला त्रिकाली द्रव्य को ही श्रद्धना।

पूज्य बाबूजी: वो तो सब मूर्खता की बातें हैं।

एक बार ये बात पक्की कर लेने पर फिर वो सबके angle (दृष्टिकोण) समझ में आ जाते हैं। किसी (विशेष) angle से आती है ये बातें। जैसे न्याय शास्त्र में बहुत आती हैं तरह तरह की बातें, तो उसमें बहकना नहीं चाहिए। एक बार पक्का कर लो।

आ. चेतनभाई: बस! बस! एक खूँटा पकड़ लेना चाहिए।

पूज्य बाबूजी: ऐसे थोड़ी ही होता है परस्पर विरुद्ध। ऐसा दूसरी जगह हो जाएगा तो फिर ये ग़लत हो गया। सही तो एक ही होगा।

आ. चेतनभाई: एक ही होगा। बस! बस! और श्रद्धा का विषय तो निर्विकल्प ही होता है न! उसको थोड़ी ऐसे दो की श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन (है)...

पूज्य बाबूजी: निर्विकल्प माने स्व-पर का भेद नहीं है - बस ये। ऐसा है न! निर्विकल्प तो द्रव्य है ही (है) और उसके ज्ञान का विषय भी निर्विकल्प है। द्रव्य तो निर्विकल्प ही है। तो ज्ञान में स्व-पर का भेद होता है और श्रद्धा में नहीं है ये। तो वो निर्विकल्प (है)।

आ. चेतनभाई: बराबर है! बराबर है। अभी (जो) गोष्ठी चलनेवाली है न इसमें ये चर्चा चलनेवाली है कि एक दृष्टिप्रधान दृष्टि का विषय और एक ज्ञानप्रधान दृष्टि का विषय। तो अभी हम सोचते हैं कि ज्ञानप्रधान दृष्टि का विषय क्या होता है?

पूज्य बाबूजी: नहीं होता कुछ भी।

आ. चेतनभाई: हाँ....

पूज्य बाबूजी: कुछ भी नहीं होता। दृष्टिप्रधान दृष्टि का विषय वो एक ही होता है। और दृष्टिप्रधान और ज्ञानप्रधान - ऐसे दो दृष्टि के विषय थोड़ी ही ना हैं।

पूज्य बाबूजी: व्यवहार में नवतत्त्व की प्रतीति आती है। तो नौ की प्रतीति है क्या?

आ. चेतनभाई: हाँ! हाँ! बस! बस! बराबर है, ठीक है वो। अच्छी बात है, बराबर। सही बात है।

पूज्य बाबूजी: ये सब बहकने की बातें हैं ये। वो तो करोगे आप प्रयत्न.... बताओगे सबको। लेकिन कोई-कोई माननेवाला है बाकी सब अपनी बुद्धि लगानेवाले हैं। सब बहकनेवाले हैं। जो ख़ास सम्यग्दर्शन का विषय है वो विद्वानों को स्पष्ट नहीं है अभी तक। अभी तक लोकालोक को जानते हैं यह पक्का है विद्वानों को। श्रोता क्या करेंगे? श्रोता तो बहकते हैं।

आ. चेतनभाई: वो तो वक्ता बोलेंगे वैसा (ही) मान लेंगे। और क्या करेंगे? परीक्षा प्रधानी श्रोता भी कम हैं।

पूज्य बाबूजी: उनको तो नहीं है कुछ, कुछ मतलब नहीं है। बस सब जगह कर्मकांड चल रहा है। कर्मकांड छा रहा है सब जगह (पर)। जो मूल तत्त्व है गुरूदेव का वो तो लुप्त होता जा रहा है। ये सब बड़े-बड़े विद्वानों से किसी से (भी) पूछ लो आप। वो घोल देंगे उस बात को, स्पष्ट नहीं करेंगे। बात (को) तो (जब) स्पष्ट करें तब होता है।

आ. चेतनभाई: हाँ! एकदम सही है और बात स्पष्ट ही है। उसको खाली मिलाजुला (कर) के खाली बिगड़ (दी) जाती है बात।

पूज्य बाबूजी: स्पष्ट है मगर अपेक्षायें हैं.... ये है ना दिक़्क़त। अनेकांत से दूसरी बात भी निकल के आ जाती है। न्याय शास्त्र में दूसरी (बात) आ जाती है। तो ये तो जो थोड़े विद्वान होते हैं.... और लोग शास्त्र पढ़ते हैं न (तो कहते हैं कि) ये इसमें अकलंक देव ने ये लिखा, ये लिखा।

आ. चेतनभाई: बराबर! बराबर! उसको आगे कर देते हैं।

पूज्य बाबूजी: न्याय शास्त्र की बातें दूसरी है।

पूज्य बाबूजी: हाँ! ये अध्यात्म की बात अलग है।

आ. चेतनभाई: दूसरों को समझाने के लिए हैं (वो).... आती है बातें।

आ. चेतनभाई: बराबर है! बराबर है! वो तो खंडन-मंडनवाला प्रकरण हो तब की बातें हैं सब।

पूज्य बाबूजी: अब न्याय-दीपिका में धारावाही ज्ञान को अप्रामाणिक बताया है। तो ये अनुभूति तो धारावाही होती है अंतर्मुहूर्त (के लिए)।

अप्रमाण कैसे हो जायेगी? मैंने पढ़ी है न्याय-दीपिका। एक विद्वान आते थे दूर से, ब्राह्मण थे वो। उनसे पढ़ी है (मैंने)। हम २, ४, ५ जने थे लेकिन वो उछलते थे देख के (कि) ये है न्याय। तभी तो मुझे बहुत याद है वो (कि) धारावाही ज्ञान अप्रमाण है।

आ. चेतनभाई: तो उसका निष्कर्ष क्या निकला फिर बाबूजी? उसका निष्कर्ष क्या निकला फिर..... वो (जो) धारावाही ज्ञान अप्रमाण है - ऐसा बोला (है), लिखा है उसमें।

पूज्य बाबूजी: लिखा है उसमें कि ये घट को जान लेने पर ये घट है, ये घट है, ये (ज्ञान) अप्रमाण है - इस तरह से। (*संस्कृत श्लोक*)

आ. चेतनभाई: बाबूजी! सम्यग्दर्शन के समय में जो सम्यग्ज्ञान प्रगट हो गया..... सम्यग्दर्शन के समय में ही सम्यग्ज्ञान की प्रगटता हो गई, तो जैसे सम्यग्दर्शन १००% percent सम्यक् हो गया.... ऐसे (क्या) सम्यग्ज्ञान (भी) १००% सम्यक् हो जाता है उस समय पर?

पूज्य बाबूजी: दोनों एक साथ ही होते हैं। बिल्कुल एक समय का भी अंतर नहीं है। ज्ञान पहले स्वच्छ होता है। कुंदकुंद ने पहले ज्ञान लिया। देखो ३८वीं गाथा जो अभी ली है मैंने, उसमें समयसार में। जब अनादि का मिथ्यात्व जाता है तो उसके बाद वो जो अनुभव होता है, तो उसमें पहले तो अप्रतिबुद्ध था न! उन्माद था पहले (तो) और अप्रतिबुद्ध (भी) था। उसके बाद स्वयं के लिए लिखा है कि मैं, मैं ऐसा अनुभव करता हूँ। माने मैं ऐसा जानता हूँ पहले तो ये लिखा। फिर ऐसा श्रद्धान करता हूँ कि जैसा आचरण हो - इस तरह लिया है।

आ. चेतनभाई: हाँ! ज्ञान-दर्शन-चारित्र ऐसा लिया है। बराबर!

पूज्य बाबूजी: तो ज्ञान के स्वच्छ हुए बिना श्रद्धा नहीं होती क्योंकि श्रद्धा में ज्ञान नहीं है। श्रद्धा जानती नहीं है तो वो कहाँ जाएगी? इसलिए ज्ञान जिसको विषय करता है श्रद्धा उधर अपने आप (ही) चली जाती है।

आ. चेतनभाई: सही बात है! एकदम बराबर। बराबर! हाँ! वो मुख्य काम तो ज्ञान का ही है। ज्ञान तो main है। उसके बिना श्रद्धा का कुछ काम ही नहीं। वो तो अंधी है (और) वो तो रास्ता दिखानेवाला तो ज्ञान है।

पूज्य बाबूजी: जैसे ये पैर हैं न! अपने इन पैरों से अपन चलते हैं। ये पैर देखते नहीं हैं। देखती (तो) आँखें हैं। अब आँखों से देखे बिना पैर चल सकते हैं क्या?

आ. चेतनभाई: नहीं चल सकते (हैं)। ज्ञान का ही काम है मूल तो, मुख्य। तो आँखों से देखते हैं तो पैर व्यवस्थित चलते हैं। एक के बाद एक-एक के बाद एक। इनमें आँख नहीं हैं, श्रद्धा की तरह। लेकिन आँख से दिखते ही पैर चलने लगते हैं बिना आँख के। और सही चलते हैं ऐसे ज्ञान और श्रद्धा का है।

आ. चेतनभाई: एकदम बराबर है। बराबर है। ये तो बराबर हो गया बाबूजी। मेरा प्रश्न दूसरा है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान.... सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन एक साथ में सम्यक् हो गए,

चौथे गुणस्थान में। तो अभी केवलज्ञान तो १३ वें गुणस्थान में होगा। तो चौथे गुणस्थान से १३ वें गुणस्थान तक का जो सम्यग्ज्ञान है वो केवलज्ञान तो है नहीं। तो उसमें जो मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी आया है कि वो क्षयोपशम ज्ञान है, तो आवरणजनित क्षयोपशम है उसमें। तो उसका क्या अर्थ है? ज्ञान तो सम्यक् हो गया मगर केवल नहीं हुआ है।

पूज्य बाबूजी: बस! इतना ही अर्थ है कि उसमें आत्मा का स्वरूप जानने में रंचमात्र फर्क नहीं है। बाकी जगत का स्वरूप जानने में फर्क हो सकता है। गलती हो सकती है। सर्प को रस्सी जानता है (और) रस्सी को सर्प जानता है। कोई दिक्कत नहीं है (उसमें)। लेकिन वो जो आत्मा को स्पष्ट जाना है वो श्रुतज्ञान केवलज्ञान (को) लाता है। वो श्रुतज्ञान है, भावश्रुतज्ञान! वो लाता है केवलज्ञान (को)। उसके पास है इसका केवलज्ञान का मुकुट। भावश्रुतज्ञान का उत्तराधिकारी है केवलज्ञान। इनसे (कुछ) नहीं है जगत से।

आ. चेतनभाई: हाँ! नहीं! नहीं! वो मतलब ही नहीं है जगत से कोई।

पूज्य बाबूजी: उसका तो बहुत गहरा है काम। वो (तो) जगत को मानता ही नहीं है। सत्ता ही नहीं मानता एक बार तो। जानकर क्या जानूँ इसका? कि इसका क्या जानूँ? कोई मेरा ज्ञेय ही नहीं है विश्व में। कोई ज्ञेय नहीं (है) विश्व में मेरा। एक मात्र ये ज्ञेय है। अगर ज्ञेय (को बाहर) मानता हूँ तो वो मोटा मिथ्यात्व है कि मेरा ज्ञेय (है) - ये मोटा मिथ्यात्व (है)। सारा जगत उसने अपना मान लिया।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो तो बराबर है। एकदम सही बात है, बराबर है।

पूज्य बाबूजी: वो तो पर का कर्ता-कर्म भाव मिटाने के लिए ज्ञेय कहा (है)। अभी ज्ञेय को भी खतम कर दिया, समाप्त कर दिया।

आ. चेतनभाई: वो तो एक ही ज्ञेय रह गया.... ये अपना शुद्धात्मा।

पूज्य बाबूजी: एक ही ज्ञेय है। और को जानने में क्या मतलब है? जिनके साथ अत्यंत परत्व है, आत्यंतिक परत्व! उनसे क्या होनेवाला है उनको जानने से? स्पष्ट कहा है अष्टपाहुड में **परदव्वादो दुग्गइ (अष्टप्राभृत ग्रंथ, मोक्षपाहुड़ - गाथा १६; अर्थ:- परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्यसे सुगति होती है)।**

कितना बढ़िया है! झाँको ही मत। ज्ञेय को जानकर क्या जाना? ये जाना कि अब जानना ही नहीं है। इसको ही जानना है। इसको ही अंतर्मुहूर्त जान लिया तो केवलज्ञान आ गया। अब कहाँ था दूसरा ज्ञान, अवधि मनःपर्यय और दूसरे (सभी)? अवधि, मनःपर्यय का तो काम ही नहीं है।

आ. चेतनभाई: हाँ! उसका तो कोई काम ही नहीं है कुछ। बराबर है। वो तो अनुभव में भी बाहर रह जाते हैं। वो तो कोई मतलब ही नहीं उसका।

तो बाबूजी ये निर्विकल्पदशा के बाद में जो विकल्पात्मक दशा आती है... निर्विकल्पदशा असंख्य समय चली चौथे गुणस्थान में, चतुर्थ गुणस्थान में। बाद में तो सविकल्पदशा तो आती ही है ज्ञानी को। तो सविकल्पदशा जब आवे तब प्रतीति तो १०० प्रतिशत उसकी बन गई।

पूज्य बाबूजी: सविकल्पदशा में तो सभी कुछ होता है। क्या नहीं होता? सातवें नरक में सम्यक्त्व हो जाने पर इसके बाद लड़ता नहीं है क्या?

आ. चेतनभाई: हाँ वो तो है। वो तो है।

पूज्य बाबूजी: फिर? सब होता है वो तो।

आ. चेतनभाई: नहीं! तो वो उस समय सविकल्पदशा में जो ज्ञान है, तो ज्ञान का कोई दो विभाग रहता है कि एक ही विभाग रहता है?

पूज्य बाबूजी: स्व-पर के भेद की शक्ति नहीं गई उसकी। वो शक्ति नहीं गई। वो एक बार उत्पन्न हो गई और आत्मा को सर्वश्रेष्ठ स्थान पर रखा है तो वो नहीं खतम हुआ। ये सब बाहर का है ये। इसमें परत्व है उसका, परत्व है उसका। सबमें परत्व है (और) केवल इसमें अपनत्व है, आत्मा में। पर की ओर उपयोग जाने पर भी अपनत्व इसी में है; और सब में परत्व है। परत्व है इसलिए जाना-अनजाना बराबर है दोनों। अब उसको जानना नहीं है। ज्ञान क्षायोपशमिक इसलिए जानने में आता है पर उपेक्षाभाव से (जानता है)। परत्व है, परत्व। परत्व की दीवार बहुत जबरदस्त होती है। बहुत जबरदस्त होती है।

आ. चेतनभाई: तो बाबूजी! वो परत्व तो है, उपयोग बहिर्मुख होता है, तो वो उपयोग को अपन निर्विकल्प उपयोग तो कह नहीं सकते।

पूज्य बाबूजी: हाँ! नहीं कह सकते।

आ. चेतनभाई: हाँ! तो वो सविकल्प है। हाँ! तो वो सविकल्प ज्ञान है उसको इन्द्रियज्ञान बोल सकते हैं कि ज्ञान ही बोल सकते हैं?

पूज्य बाबूजी: नहीं! नहीं! इन्द्रियज्ञान भी है।

आ. चेतनभाई: इन्द्रियज्ञान भी है?

पूज्य बाबूजी: हाँ! है न! क्यों नहीं (है)?

आ. चेतनभाई: तो फिर वो इन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियज्ञान दोनों अलग-अलग हो गए न? दो विभाग हो गए न?

पूज्य बाबूजी: अतीन्द्रियज्ञान की शक्ति पड़ी है। अतीन्द्रियज्ञानरूप परिणमन नहीं है। शक्ति पड़ी है उसमें स्व-पर की। स्व-पर के भेद की, उसकी शक्ति पड़ी है।

आ. चेतनभाई: तो वो लब्धरूप कहा जाये उसको? लब्धिरूप?

पूज्य बाबूजी: हाँ! लब्धिरूप है।

आ. चेतनभाई: अच्छा! और उस समय इन्द्रियज्ञान उपयोगात्मक हो गया।

पूज्य बाबूजी: हाँ! वो उपयोगात्मक हो गया।

आ. चेतनभाई: अच्छा! और फिर निर्विकल्पदशा आवे तो फिर वो पूरा शुद्धोपयोग हो गया? बाद में फिर निर्विकल्पदशा आ जावे तो शुद्धोपयोग हो गया?

पूज्य बाबूजी: हाँ! हो गया।

आ. चेतनभाई: तो वहाँ लब्धि-उपयोग तो खतम हो गई बात (वहाँ)। वहाँ तो शुद्धोपयोग है।

पूज्य बाबूजी: हाँ! फिर उपयोगरूप हो गई।

आ. चेतनभाई: वो उपयोगरूप हो गई उसकी लब्धि। बराबर है! बराबर है। फिर वो परिणति और उपयोग दो भेद नहीं रहते।

पूज्य बाबूजी: लब्धि भी पर्याय है। पर्याय शक्ति है उसकी। लिया है न टोडरमल जी ने (दृष्टांत कि) गाँव जाने की शक्ति.... वो लब्धिरूप है वो। और लब्धि भी पर्याय शक्ति है जो (कि) अभी नहीं है (लेकिन) आगे प्रगट होगी। वो लब्धि उपयोग का बहुत बढ़िया है वो और इसमें बहुत चक्कर है वो।

आ. चेतनभाई: हाँ! इसलिए ही पूछ रहा हूँ ना आपको सब।

पूज्य बाबूजी: लब्धि माने शक्ति। गुणरूप शक्ति नहीं।

आ. चेतनभाई: पर्यायरूप है न वो।

पूज्य बाबूजी: पर्याय की शक्ति (तो) पर्याय में पड़ी है।

आ. चेतनभाई: तो उस समय जो लब्धिरूप ज्ञान चलता है, उपयोग विकल्प में होता है तब।

पूज्य बाबूजी: आपको समयसार की १०० गाथायें याद हैं। अब आपसे पूछा कि (गाथायें) बोलो, तो आप पहली गाथा बोलेंगे। फिर कहा कि ९९ का क्या हुआ? कहाँ बोल रहे हो तुम, तो क्या हुआ ९९ का? तो ९९ नहीं हैं आपको याद उस समय? हैं कि नहीं हैं?

आ. चेतनभाई: हाँ तो लब्धिरूप है वो।

पूज्य बाबूजी: वो लब्धिरूप है। और किसमें है लब्धिरूप? कि आपने जो पहली गाथा बोली, उस पहली गाथा (बोलने) की ये शक्ति है (कि) ९९ को पीकर बैठी है (वो पर्याय)। लेकिन परिणमन में ये ऐसा होता है। परिणमन में एक-एक चलती है क्योंकि वो ज्ञान क्षयोपशमरूप कमजोर है, इसलिए सबको एक साथ नहीं बोल सकते।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो एक समय में एक ही उपयोग काम करता है।

पूज्य बाबूजी: ऐसा! लेकिन वो शक्ति है उसमें।

आ. चेतनभाई: शक्ति पड़ी है, पर्याय शक्ति है उसमें।

पूज्य बाबूजी: एक व्यक्ति एक बार में ४० किलो वजन उठाता सकता है। उठा लेता है। लेकिन उसने एक बार एक समय में एक किलो वजन उठाया। तो ४९ किलो का क्या हुआ? अभाव हो गया?

आ. चेतनभाई: नहीं, नहीं! अभाव नहीं हुआ।

पूज्य बाबूजी: फिर क्या हुआ? उसके पास है कि नहीं?

आ. चेतनभाई: हाँ! है, है। शक्ति में है वो। पर्याय-शक्ति पड़ी है ऐसी, अभाव नहीं हुआ है।

पूज्य बाबूजी: परिणमन में नहीं है।

आ. चेतनभाई: परिणमन में नहीं है। उपयोगात्मक नहीं है वो।

पूज्य बाबूजी: लब्धिरूप पर्याय ही है। उस पर्याय में ही ये सभी हैं। लब्धि भी उस ही पर्याय में है। अलग नहीं पड़ी है कोई। उसकी एक बार तो नास्ति कर दे। क्या मतलब हैं हमको? मुझे क्या मतलब है और से? ये ज्ञानी की दशा है, चारों गतियों के ज्ञानियों की। वो कभी नहीं मानता ना नरक में (भी) कि मैं नारकी हूँ। कहता भले ही कुछ भी हो। कहता हो, विकल्प होता हो (उसको लेकिन वो) सबको पराए में रखा है।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो तो अभिप्राय फिर गया (उसका) तो तो सब फिर गया न! बराबर है।

पूज्य बाबूजी: सबको परत्व दे दिया। इतना बढ़िया जैनदर्शन (है) और गुरुदेव ने इतना निहाल किया है। केवल एक ही वस्तु जानने लायक है। ..... में से तो दुर्गति है। ज्ञेय मानता है तो उधर उपयोग गए बिना रहेगा नहीं। यही तेरा ज्ञेय! २७१ कलश में कितना बढ़िया गुरुदेव ने और राजमल जी ने कितना बढ़िया किया है।

आ. चेतनभाई: हाँ! भ्रांति बोल दिया (उसको)।

पूज्य बाबूजी: यही ज्ञान, यही ज्ञाता, यही ज्ञेय।

आ. चेतनभाई: सबको एक में डाल दिया।

पूज्य बाबूजी: अब क्या रहा बताओ आप?

आ. चेतनभाई: तीनों को अभेद करके ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय।

पूज्य बाबूजी: छह द्रव्यों को तो किया ही है उन्होंने, अलग ही कर दिया छहों (द्रव्यों) से (तो)। ऐसा नहीं है (कि) छह द्रव्य (को) जानता हूँ। जैसा मैं लिख रहा हूँ, ऐसा है। इतना बढ़िया लिखा है।

आ. चेतनभाई: हाँ! एकदम बहुत अच्छा।

पूज्य बाबूजी: यही ज्ञान, यही ज्ञाता, यही ज्ञेय। हो गया न खतम?

आ. चेतनभाई: हाँ! हो गया, हो गया। सब आ गया उसमें।

पूज्य बाबूजी: कौनसा दूसरे का.... विकल्प आएगा? सब पर है, परत्व की ओर.... परत्व की कोटी में (डाल दिया सब)।

कमजोरी पड़ी है वो भी परत्व! और ये जो अत्यंत strong है, जो अनादि-निधन जिसका आज तक कुछ नहीं हुआ वो मैं हूँ। ऐसा जानने के बाद कौन रहा अब अपनी कोटी में? ममत्व की कोटी में कौन रहा? ये है बस ममत्व का विषय, ममता का विषय। यहाँ आ गई ममता पूरी की पूरी सम्यक् होकर। ये तो लोक व्यवहार में ऐसा कि यही अपना है बाकी सब पराए हैं और जानने में आते हैं। आते हैं तो क्या है उससे अपना? क्या उनके संबंध में सोचते बैठते हैं अपन? पर तो पर है ही सही.... पर पर से संबंधित जो उपयोगात्मक विकल्प है वो भी पर है। क्योंकि उससे क्या संबंध है हमारा?

आ. चेतनभाई: हाँ बराबर! वो पर ही है वो। बराबर! वो सब भावेन्द्रिय में चला गया सब।

पूज्य बाबूजी: पड़ोसी का जो पुत्र है न, उससे हमारा स्नेह है, बच्चे से। तो (एक बार) पड़ोसी नहीं था, तो वो (बच्चा) ऊपर से गिर गया। अब हम दौड़कर उसको hospital ले गए, उसका सारा काम हम कर रहे हैं। बताइए! वो जितना कुछ हो रहा है उसका सब किससे संबंध है? उसमें परत्व है कि नहीं वो जो कुछ भी कर रहा है (उससे)।

आ. चेतनभाई: पूरा परत्व है।

पूज्य बाबूजी: और कहता है (कि) मेरा बेटा, मेरा बेटा.... धाय की तरह। धाय खिलावे बाल। **सम्यग्दृष्टि जीव रहा कहे कुटुंब परिवार, ऊपर से न्यारा रहे जैसे धाय खिलावे बाल।** धाय (बोले) ए बेटा! ए बेटा! ए बेटा! और कल छोड़कर चली जाएगी। और माँ से ज़्यादा प्यार देती है..... दूध पिलाती है, लिए लिए फिरती है। भीतर परत्व पड़ा है कि नहीं?

आ. चेतनभाई: परत्व पूरा है।

पूज्य बाबूजी: वो ज्ञान शक्ति है वो, जो बाहर से अपना कहने पर भी भीतर से परत्व है उस ज्ञान में ही.... इतना शक्तिशाली है वो ज्ञान। इतना शक्तिशाली है।

मेहमान आते हैं। उनको अपन कहते हैं (कि) आप संकोच मत करना, आपका ही है सब। मकान आपका ही है, आप संकोच मत करना। फिर वो क्या मानता है? वो कहता है क्या कि जब मेरा ही है registry करा दो। नहीं! जानता है क्या वो कि ये सब बातें हो रही हैं इनमें कोई दम नहीं (है)। कोई मर्म नहीं है इसमें। कुछ नहीं माने.... केवल आदर का भाव (है)।

आ. चेतनभाई: आदर का भाव.... एकदम सही बात है।

पूज्य बाबूजी: कितने भरे पड़े हैं जगत में समझने के लिए। ऐसा ही है जीव का भटकने का.... आदत पड़ी है जो.....शास्त्रों से ही भटकता है।

सैनी पंचेन्द्रिय को.... जो स्पर्शन इंद्रिय का ही ज्ञान चल रहा है केवल, (किसी) और का नहीं चल रहा बिल्कुल। तो हम उसको सैनी पंचेन्द्रिय कैसे कहते हैं? कहते हैं (न) क्योंकि वो जो

स्पर्शवाला ज्ञान है, उसी में है सब शक्ति जो (कि) लब्धिरूप पड़ी है। भावेन्द्रिय है न! वो लब्धिरूप पड़ी है उसी में। स्पर्शन इंद्रिय से ही जान रहा है। उसी में वो चार इंद्रिय (और) मन की शक्ति पड़ी है। इतनी शक्तिशाली पर्याय है वो स्पर्शन इंद्रिय वाली (पर्याय); और निगोदिया की नहीं है (इतनी शक्तिशाली)।

आ. चेतनभाई: हाँ! नहीं है (क्योंकि) उसके पास एक इंद्रिय का ही उघाड़ है।

पूज्य बाबूजी: उसके पास शक्ति नहीं है। उसके पास कोई लब्धि नहीं है। अपन पढ़ते बहुत हैं, सुनते बहुत हैं (मगर) चिंतन नहीं है।

आ. चेतनभाई: चिंतन-विचार कम है, बराबर।

पूज्य बाबूजी: और निर्णय नहीं है।

आ. चेतनभाई: सही बात है! मेरे को ऐसा लगता था कि जो बाहर चर्चायें चलती हैं उसमें बहुत, शंकाएँ बहुत हैं। और जो आपने अभी जो बताया न वो मेरे को इतना अच्छा लगा कि एक ही पर्याय में..... एक ही पर्याय में दो भाव हैं। वो तो मालूम था, वो तो है ही। वो तो बराबर है मगर जो एक सविकल्पदशा के काल में जो निर्विकल्प परिणति चलती है उसका अर्थ ये है कि एक ही पर्याय में वो लब्धिरूप शक्तिपने गर्भित है।

पूज्य बाबूजी: गर्भित है।

आ. चेतनभाई: उसमें कोई वहाँ परिणमन होवे तो-तो वो उपयोगात्मक हो जावे (और) अनुभूति हो जावे। इसलिए उसको वहाँ परिणतिरूप ऐसे देखना कि वो पर्याय में अंदर में पर्याय की शक्तिरूप-लब्धिरूप पड़ा है।

पूज्य बाबूजी: सर्वश्रेष्ठ स्थान पर आत्मा है। वो बात गई नहीं है.... वो गई नहीं है।

आ. चेतनभाई: बस! एकदम! ये बहुत अच्छा न्याय (है)।

पूज्य बाबूजी: हम करोड़पति आदमी हैं। और हम जो है कहीं गए बाहर और जंगल में भटक गए और वहाँ हमको भीख माँगना पड़ा और ऐसे भीख माँगकर रोटियाँ खाईं। तो हम करोड़पति हैं, ये (क्या) खतम हो गया?

आ. चेतनभाई: नहीं हो गया। वो तो.... उसकी लब्धिरूप अंदर शक्ति पड़ी है वो तो।

पूज्य बाबूजी: पड़ी है कि नहीं?

आ. चेतनभाई: हाँ! वो जाएगी नहीं। वो जाएगी नहीं क्योंकि वो चला नहीं गया है। वो तो क्षणिक नहीं है। क्षणिकरूप नहीं है बाकी चला नहीं गया है।

पूज्य बाबूजी: चला नहीं गया (है)। अभाव हो जाए तो भिखारी हो गया वो तो।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो तो खतम हो गई बात।

पूज्य बाबूजी: वो तो भिखारी हो गया।

आ. चेतनभाई: माने कि ये बहुत.... मेरे को बहुत अच्छा इसमें समाधान हुआ कि ये जो सम्यग्ज्ञान हो गया चौथे गुणास्थान में और तेरहवें में केवलज्ञान हुआ, तो उसके बीच की अंतरवाली जो भी लब्धिरूप और उपयोगात्मक स्थिति ज्ञानी की चलती है उसका निष्कर्ष माने कि आज स्पष्ट बहुत अच्छा हुआ। एकदम स्पष्ट हो गया। नहीं तो क्या होता था कि परिणति अंदर में चलती रहती है और उपयोग बाहर विकल्पात्मक दशा में है। तो परिणति चलती रहती है उसका मतलब क्या है? कि वो परिणति पर्याय में शक्तिरूप-लब्धिरूप विद्यमान है, इतना अपने को समझना है बस।

पूज्य बाबूजी: लब्धिरूप है।

आ. चेतनभाई: बस! बस! बहुत अच्छा हो गया।

पूज्य बाबूजी: अपना-अपना कहते हुए, खाते हुए, पीते हुए, व्यवसाय करते हुए, शादी-विवाह करते हुए, सब करते हुए भी स्व-पर का जो भेद है..... और उसमें स्व को सारे जगत से श्रेष्ठ स्थान पर रखा है वो बात कभी खतम नहीं होगी। और वो केवलज्ञान लाती है वो उतना सा ज्ञान। वही है वास्तविक ज्ञान इतना सा, स्व-पर के भेदरूप जो शक्ति है (वो); ये नहीं लाता जगत को जानने वाला। ये तो है ही नहीं। शिवभूति मुनि को क्या था बताओ? क्या था उनको?

आ. चेतनभाई: हाँ! कुछ नहीं। वो तो 'मा रुष मा तुष' उतने में तो हो गया था। और वो ज्ञान चलने लगा बस आगे (और) केवलज्ञान हो गया।

पूज्य बाबूजी: ना आत्मा का ज्ञान (था) और ना जगत का ज्ञान (था)! वो ज्ञान है शक्तिशाली! स्व-पर के भेदरूप जो है (वो) महा शक्तिशाली ज्ञान है, भावश्रुतज्ञान। वो केवलज्ञान (को) लाता है। उसको है उत्तराधिकार का मुकुट, जैसे (कि) चक्रवर्ती अपने बेटे को देता है। ये साफ है शायद दूसरी गाथा में.... केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाली! आया न?

आ. चेतनभाई: हाँ! भेदज्ञान ज्योति! केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान ज्योति।

पूज्य बाबूजी: भेदज्ञान शक्ति! है न? वो है भावश्रुतज्ञान। अब समाधान और हो जाएगा आपको (क्योंकि) प्रमाण मिल गया (है)।

आ. चेतनभाई: नहीं! वो प्रमाण तो (ऐसा है) बाबूजी, आप बोलें तो वो प्रमाण ही होता है न! ऐसे थोड़ी (है)। शास्त्र की जरूरत नहीं है।

पूज्य बाबूजी: मैं तो खैर कुछ भी नहीं हूँ।

आ. चेतनभाई: नहीं! नहीं! ऐसा नहीं होता है। वो तो आप बोलते हो तो वो तो... शास्त्र में से जो होता है वो ही निकलता है न अंदर से। ऐसे थोड़ी (ना) होता है कोई।

पूज्य बाबूजी: ये ऐसी बातें याद रखने लायक हैं। ऐसे पुष्ट प्रमाण हैं, पुष्ट। केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदविज्ञान-ज्योति, उसका उदय होना वो स्वसमय की और परसमय की बात है...दूसरी गाथा में।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो सात बोल से सिद्ध किया है, उसमें स्वसमय परसमय बताया (है)। बराबर! बहुत अच्छा है।

पूज्य बाबूजी: कितना बढ़िया है! आचार्यों ने (कहा है कि) केवलज्ञान को उत्पन्न करने वो उतनी सी शक्ति भेदज्ञान।

आ. चेतनभाई: हाँ! उतनी सी शक्ति, उतना सा ज्ञान..... (उसने) स्व-पर का विभाग कर दिया।

पूज्य बाबूजी: केवल इतना, मैं और बस.... सब। गिनती नहीं करना है।

आ. चेतनभाई: हाँ! वो कौन है वो नहीं देखना (है) कुछ।

पूज्य बाबूजी: गिनती नहीं करना।

आ. चेतनभाई: मेरे अलावा सब पर (हैं)।

पूज्य बाबूजी: सब पर (हैं)। मैं कोटा के मकानों को क्यों गिनूँगा?